त्रिपुरा की लोक कथाओं में नारी: कॉकबरक भाषा के संदर्भ में

डॉ. नुकफाँटी जमातिया
ईमेल: nukjamatia@gmail.com

मानव जीवन में लोक साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी भी समुदाय की संस्कृति की झलक उसके लोक साहित्य में निहित होती है। उस समुदाय की सामाजिक संरचना, धार्मिक आस्था, लोक मान्यताएँ एवं विश्वास, सामाजिक कानून व्यवस्थाएँ तथा रीति-नीति के प्रत्यक्ष दर्शन लोक साहित्य में ही स्पष्ट में दिखाई देते हैं। मनुष्य जन्म से लेकर मरण तक के सफ़र में बहुत ही गहरे रूप में अपनी लोक मान्यताओं से संबद्ध रहता है। भारत के पूर्वोत्तर में स्थित आठ राज्यों में से एक है-'त्रिपुरा', जिसमें 19 जनजातियाँ निवास करती हैं। 'कॉकबरक' इस प्रदेश की प्रमुख भाषा है, जो मुख्यत: आठ जनजातियों-त्रिपुरी (देबबर्मा), रियांग, जमातिया, नुवातिया, मुरासिंह, उचई, कलई व रुपिनी जनजातियों द्वारा बोली जाती हैं। कॉकबरक भाषा तिब्बती-चीनी भाषा परिवार से संबद्ध है जो तिब्बती-बर्मी शाखा से विकसित 'बोडो' प्रशाखा की भाषा है।

'कॉकबरक' भाषा त्रिपुरा राज्य की द्वितीय सरकारी भाषा है। सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक दृष्टि से उपेक्षित होने के बावजूद लोक साहित्य इस भाषा में व्यापक रूप में विद्यमान है। वस्तुत: इस भाषा में लोक साहित्य का स्वरूप लिखित से ज्यादा मौखिक है। आज भी तुलना करें तो इस भाषा में प्रकाशित साहित्यिक पुस्तकों के अभाव को देखा जा सकता है। प्राचीन समय से ही मौखिक अभिव्यक्ति यहाँ लोक साहित्य का माध्यम रहा है। हालांकि वर्तमान में लिखित अभिव्यक्ति की ओर अधिक से अधिक ध्यान दिया जा रहा है, जिससे मौखिक तौर पर हम जिन लोक कथाओं को सुनते आये हैं उन्हें सहेज कर सुरक्षित रखा जा सके। वस्तुत: इस भाषा में लोक साहित्य का स्वरूप लिखित से ज्यादा मौखिक है।

कॉकबरक लोक कथाओं में मुख्यत: झूम-खेती वर्णन, कृषि-वर्णन, प्रेम-वर्णन, धार्मिक विश्वास आदि मुखरित हुआ है, इनमें नारी की उपस्थिति भी प्रमुख रूप से बनी रही है। 'कॉकबरक लोक कथाओं में स्त्री' पर बात करते हुए यह कहना उचित होगा कि यहाँ नारी की भूमिका प्रारंभ से ही महत्वपूर्ण रही है। चाहे वह सकारात्मक स्वरूप में हो या नकारात्मक स्वरूप में। किसी भी साहित्य और समाज में स्त्री और पुरूष को सिक्के के पहलुओं के समान स्वीकारा गया है। जो एक दूसरे के अभाव में अपूर्ण है, अस्तित्वहीन हैं। दोनों ही प्रकृति के दो आवश्यक अंग हैं। दोनों के मिलने से ही एक परिवार की संकल्पना होती है, नारी और

पुरूष की इसी पूर्णता का प्रतीक ही समाज है। हर एक जाति, सभ्यता और संस्कृति तथा समाज में नारी का एक विशिष्ट स्थान है, कोई भी कथा नारी के अभाव में अपूर्ण सी प्रतीत होती है।

कॉकबरक भाषा-भाषी समाज में स्त्री-जीवन के विविध आयाम को जानने और समझने के लिए उसके अतीत और वर्तमान को समझना अत्यंत आवश्यक है। पूर्वोत्तर को लेकर प्राय: आम लोगों की यह धारणा रही है कि इन राज्यों में रहने वाली जनजातियों का समाज मातृसत्तात्मक है। यहाँ स्त्रियों की भूमिका सामाजिक-धार्मिक कार्यक्रमों में महत्वपूर्ण है। उन्हें इच्छानुसार कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता है। अपनी इच्छानुसार वर का चुनाव कर प्रेम-विवाह करने की विशेष छूट है आदि, लेकिन वास्तविकता कुछ और ही है।

कॉकबरक भाषी परिवारों में हमें पितृसत्तात्मक व्यवस्था ही देखने को मिलती है। परिवार में पिता ही मुखिया होता है, और लगभग सभी अधिकारों का मालिक भी। घर के सभी सदस्यों को उसके द्वारा लिए गए निर्णयों को मानना पड़ता है। किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्य हेतु पिता की अनुमति और सलाह लेना भी जरूरी समझा जाता है। परिवार में पिता घर के हर कार्य को संभालता है, उसी तरह वह समाज के प्रत्येक धार्मिक-सामाजिक कार्यों में भी सजग रहता है। वहीं स्त्रियाँ घरेलू कार्यों के साथ-साथ कृषि संबंधी कार्यों में पूरा हाथ बँटाती हैं। देखा जाए तो कृषि संबंधित कार्यों में स्त्रियों की भागीदारी तीन गुना रहती है। आशय यह है कि मुख्यत: घर के भीतरी काम को स्त्रियाँ ही करती हैं और बाहरी काम, नौकरी आदि पुरूषों के हिस्से होते हैं।

'कॉकबरक लोक कथाओं में नारी' को स्पष्ट करते हुए मैं कुछ महत्वपूर्ण एवं बहुचर्चित लोक कथाओं का ज़िक्र करना चाहूँगी, जिसमें कॉकबरक भाषी स्त्रियों की स्थितियाँ स्पष्ट हुई हैं। आरंभ से देखें तो त्रिपुरा राज्य में राजा का शासन था, आम जनता राजा के नियमों, आदेशों को मानने को बाध्य थी। राजसी सैनिक अपनी-अपनी शक्तियों मनमाना दुरुपयोग करते थे। ऐसी परिस्थितियों में इस समाज की स्त्रियों को किन-किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता था, वे सारी स्थितियाँ कॉकबरक लोक कथाओं में बखूबी अभिव्यक्त हुई हैं। कॉकबरक भाषी समाज में ऐसी कथाएँ भी मिलती हैं, जहाँ स्त्री, पुरुषों के भोग-विलास का शिकार होती रही हैं। अपने ही परिवार में, अपने कहलाने वाले लोगों के हाथों घर की स्त्रियाँ अपने स्त्रीत्व की रक्षा नहीं कर पाती। ऐसी ही कथा है 'कान्चनमाला' की। जिसमें कान्चनमाला को अपने जेठ की वासनाओं की आग में विधवा का जीवन यापन करना पड़ता है।

'कान्चनमाला' की कथा उस समय की है जब त्रिपुरा राज्य में राजतंत्र था। जब-जब राज्य में युद्ध छिड़ने की सूचना आती, तब राज्य की सैन्य शक्ति बढ़ाने हेतु जितने भी विवाहित या अविवाहित युवक थे उन्हें सेना में भर्ती होना ही पड़ता था। यह ऐसे ही एक परिवार की कथा है जिस घर का बड़ा पुत्र पहले से ही राज्य की सेना में नियुक्त था। जो कि राजधानी में ही रहता था। जब वह लम्बे अरसे के बाद अपने छोटे भाई

की शादी में घर आया तो अपने भाई की पत्नी को देखकर आश्चर्यचकित रह जाता है। जिस लड़की को उसने बचपन में देखा था अब वह अत्यंत रूपवती बन चुकी थी, वह और कोई नहीं कान्चनमाला थी। यहीं से कान्चनमाला की ज़िन्दगी की त्रासदी का आरंभ होता है। कान्चनमाला को देखकर जेठ की सोई हुई वासना जागृत हो उठती है और वह अपने ही छोटे भाई की पत्नी को पाने के लिए लालायित व बेचैन हो उठता है। ऐसे ही समय में सूचना आती है कि युद्ध छिड़ने वाला है। अत: सैनिकों की भर्ती की जाएगी। कान्चनमाला का जेठ मौके का फायदा उठाकर अपने छोटे भाई को अपने साथ राजधानी लेकर चला जाता है। बेचारी नवविवाहिता कान्चनमाला पति वियोग में ही रह जाती है।

तीन महीनों के बाद जब कान्चनमाला का जेठ अकेला ही घर वापस आता है तो उत्साही कान्चनमाला अपने पति का समाचार पूछती है। पहले तो जेठ कुछ नहीं बताता, किन्तु तीन-चार पात्र शराब के पी लेने के बाद उसके मुँह से सच्चाई बाहर निकल आती है कि उसके पति को वह कैद करके कहीं छोड़ आया है। अब वह कभी वापस नहीं लौटेगा, जिसे सुनकर वह बहुत दुखी हो जाती है। कान्चनमाला समझ जाती है कि यह सब उसके जेठ का किया धरा है। उसका पति फिर कभी लौटकर वापस नहीं आता और वह अपने ही घर में जेठ द्वारा शोषण का शिकार बनकर रह जाती है। उसे विधवा के रूप में जीवन यापन करना पड़ता है।

इसी तरह एक और कथा है-'कॉकतासादी'। यह लोककथा भी राजतंत्र शासनकाल की कथा है। जिसमें आम परिवार का चित्रण है। 'कॉकतासादी' अर्थात् 'बातें न करना' या मौन रहना। राजतंत्र काल में आम जनता को अपनी आवाज उठाने का अधिकार नहीं था। अत: राजसी सैनिक अपनी मन-मर्ज़ी करते थे। बेटी-बहन सुरक्षित नहीं थी। इनाम के लोभ में किसी की भी बहन-बेटी को उठाकर राजमहल ले जाते थे। 'कॉकतासादी' लोककथा में माता-पिता दोनों बेटियों को काम पर जाने से पूर्व सदैव घर से बाहर न निकलने, जोर से न बोलने की हिदायत इसलिए देते थे कि उनकी बेटियों के साथ कुछ ऊँच-नीच न हो जाए। अपनी बेटियों की सुरक्षा की दृष्टि से वे ऐसा करते थे। बेटियाँ भी सदा माता-पिता की बात मानती थीं। इतनी सावधानी बरतने के बावजूद दोनों युवतियाँ राजा के सिपाहियों द्वारा हर ली जाती हैं, और माता-पिता को बेटियों की जुदाई सहनी पड़ी। वे अपनी बेटियों की रक्षा करने में असफल ही रह जाते हैं।

कॉकबरक भाषा में ऐसी कई कथाएँ हैं, जहाँ नारी अपनी पहचान एवं अस्तित्व बनाए रखने के लिए संघर्ष करती है। किन्तु जब संघर्ष साथ छोड़ दे ऐसी स्थितियों में उसे मोक्ष का मार्ग अपनाना पड़ता है। उदाहरण के लिए सुप्रसिद्ध 'चेथुवाँग' लोककथा को मिसाल के तौर पर देखा जा सकता है। 'चेथुवाँग' लोककथा में, बड़े भाई को अपनी ही सगी बहन से प्रेम हो जाता है। नदी पार करते समय भाई अपनी बहन की टाँगों को देख मोहित हो जाता है। तब से वह इस जिद में बैठ जाता है कि वह अपनी ही बहन से विवाह करेगा। अपने पुत्र की इस बेबुनियाद और लज्जापूर्ण हठ से माता-पिता को बहुत आघात पहुँचता है। किंतु

वह इस असंगत प्रस्ताव के लिए अपने माता-पिता पर जोर डालता है। अपने पुत्र के इस हठ के आगे दोनों हथियार डाल देते हैं और विवाह की तैयारी में लग जाते हैं। इधर बहन इन सब से बेख़बर जी रही थी। घर में शादी की तैयारियाँ शुरू होती है, जिसे देख कर वह उत्साहित होकर पूछती है कि- किसके साथ भाई का ब्याह हो रहा है?...दुल्हन कैसी है?...कौन है?...कहाँ से है? ...किन्तु माता-पिता उससे कुछ भी नहीं कहते।

सच्चाई से बेख़बर वह अपनी ही शादी की तैयारियाँ जोर-शोर से करने में जुट जाती है। शुरूआत में उससे बातें छुपाई जाती हैं किन्तु जैसे-जैसे दिन नजदीक आते गए उसे सच्चाई का पता चल जाता है। बहन पर माता-पिता अपने ही भाई से विवाह करने के लिए दबाव डालते हैं, जिसे वह साफ इंकार कर देती है। वह परिवार के लोगों को समझाती है, विनती करती है, लेकिन कोई सुनने वाला नहीं होता। वह रोती-गिड़गिड़ाती है पर परिवार मूक बना रहता है। अंतत: शादी का दिन आ ही जाता है। वह बहुत दुखी होकर अपने ईश्वर की स्तुति करती है और 'चेथुवाँग' पेड़ के ऊपर बैठकर रोती हुई गाती है कि-

"लक चेथुवाँग लक!

आङ कुथार अङ खे,

तेई आनि कुथार मुङ

ओ हावो साजकना तङखे

लक चेथुवाँग लक!"

अर्थात-

"बढ़ो चेथुवाँग बढ़ो!

अगर मेरा स्त्रीत्व पवित्र है,

और इस पवित्रता की कथा

सदियों तक सुनायी जाएँ,

तो, "बढ़ो चेथुवाँग बढ़ो!

तभी चेथुवाँग की शाखाएँ ऊपर की ओर बढ़ने लग जाती हैं और आकाश में विलीन हो जाती हैं। जब उसके पास कोई चारा न बचा तो उसने एक मात्र राह को चुना- मोक्ष की राह। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए वह हार नहीं मानती, समझौता नहीं करती और अन्तत: मोक्ष के मार्ग को अपना लेती है।

'कॉकबरक' भाषी समाज में विवाह एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक उत्सव माना जाता है। यहाँ एक विवाही प्रथा प्रचलित है, बहु विवाह को सामाजिक अपराध माना जाता है। इस समाज में विधवा विवाह और तलाक भी मान्य है, युवक-युवतियाँ आपस में स्वतंत्र रूप से मेल-जोल रखते हैं, किन्तु स्त्रियों को इच्छानुसार वर चुनने का अधिकार नहीं रहा था। अगर वह अपने मनपसंद वर का चुनाव करती है और परिवार उसे नापसंद कर दे, अस्वीकार कर दे तो उसे परिवार और समाज दोनों से ही बहिष्कृत कर दिया जाता था।

इसी तरह की वेदना बहुचर्चित 'खुमपुई' लोककथा में अभिव्यक्त हुई है। यह लोक कथा कॉकबरक भाषी समाज में बहुत चर्चित है, जिसमें एक ऐसे 'अचाई' (ओझा) के परिवार की कहानी है जो अपनी जवान बेटियों के प्रति लापरवाह है। जवान बेटियाँ खुद अपने जीविकोपार्जन के लिए संघर्षरत हैं। तपती धूप, बारिश की मार सहती दोनों बहनें 'झूम' में अथक परिश्रम करती हैं, और पिता को कोई फ़िकर नहीं। बड़ी बहन 'राइमा' को झूम खेती करते-करते एक श्रापित युवक जो कि अजगर के रूप में है, से प्रेम हो जाता है और अपनी इच्छा से वर का चुनाव कर वह अपने को उस युवक की विवाहिता स्वीकार कर लेती है। अपनी छोटी बहन साइमा से वचन लेती है कि घर में किसी से कुछ न कहे। कुछ दिनों तक माता- पिता से यह बात छुपी रहती है, लेकिन जैसे ही पिता को इस बात की भनक लगती है वह छोटी बेटी साइमा से सच्चाई उगलवा लेता है और गुस्से से पागल हो उठता है। वह पिता, जिसने कभी अपनी बेटियों के सुख-दुख का ख़्याल नहीं रखा। वह बेटी के द्वारा उठाए गए इस कदम से बहुत नाराज और अपमानित होता है। समाज में अपना अपमान समझता है। मौका मिलने पर अपने ही दामाद की धोखे से हत्या कर देता है। दु:खी व हताश होकर राइमा जल समाधि ले लेती है। उसके पास कोई और चारा नहीं बचता। अर्थात् बहन (चेथुवांग लोककथा), राइमा (खुमपुई लोककथा) आदि स्त्रियों की आत्महत्या को सामाजिक नैतिकता पर एक आघात के रूप में देखा जा सकता है।

कॉकबरक लोक कथाओं में नारी चेतना और उसके कर्मठ जीवन, त्याग, उत्सर्ग आदि गुणों के साथ उसके गौरव का चित्रण किया गया है। कॉकबरक भाषी स्त्रियाँ प्राय: स्वावलंबी और अस्तित्ववादी होती हैं। जिसकी गूँज इस भाषा की लोक कथाओं में आज भी मुखरित है। स्त्री-चित्रण इस भाषा की लोक कथाओं में व्यापक रूप में अभिव्यक्त है। वह इतनी सामर्थ्य रखती है कि प्रतिकूल परिस्थितियों में वह अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकती है। अपने पैरों पर खड़ी भी हो सकती है।

यही कारण है कि कई स्त्रियाँ विवाह न करके अपने माता-पिता या भाई के साथ रहना पसंद करती थीं। स्त्रियों के इस फैसले को समाज में बुरा नहीं माना जाता है। वर्तमान में भी खास तौर पर इस तरह की स्थितियाँ 'जमातिया समाज' में दिखती हैं। कॉकबरक लोककथाओं में वर्णित स्त्रियों के इस संघर्ष से स्पष्ट होता है कि अतीत में उनकी स्थिति विचित्र रही होगी, लेकिन विवाह के बाद उन्हें अपनी प्रवृत्ति के अनुसार चलने में कोई रोक-टोक नहीं थी। सामान्य जीवन के अलावा भी समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यों में पति के साथ भाग लेती थी। अब स्थिति दूसरी है, आज स्त्रियाँ भी इच्छानुसार वर का चुनाव कर सकती हैं। दूसरे शब्दों में उसे भी प्रेम विवाह करने की स्वतंत्रता है।

कॉकबरक भाषा-भाषी समाज की स्त्रियाँ भी इस बात को समझ चुकी हैं। उनमें चेतनाएँ विकसित हो चुकी हैं। आज वह जीवन की विपरीत स्थितियों से न तो डरती हैं और न ही पलायन करती हैं। वह विषम से विषम स्थितियों से संघर्ष करते हुए अपनी क्षमता और शक्ति का परिचय देती हैं। बेटी, बहू, पत्नी, माँ के रूप में त्याग, दया, क्षमा, ममता, समर्पण, धैर्य आदि का परिचय वह सदियों से देती आयी हैं। अब वह शिक्षा और ज्ञान के क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहती हैं। हर संरचनात्मक एवं संगठनात्मक कार्यों में पुरुषों के समान भाग लेकर समाज में अपनी भूमिका को पुख़्ता करना चाहती हैं।

निष्कर्षत:, कॉकबरक भाषा के रचनाकारों ने मौखिक और लिखित साहित्य दोनों में नारी चेतना और नारी के कर्मठ जीवन, त्याग, उत्सर्ग आदि गुणों के साथ उसके गौरव एवं चेतना का चित्रण किया है। माना कि कॉकबरक भाषी स्त्रियाँ पूर्व में सामाजिक, परिवारिक बंधनों बंधी हुई थी, किंतु वे तब भी स्वावलंबी थीं और वर्तमान में भी हैं। वह इतनी सामर्थ्य रखती हैं कि अपने पैरों पर खड़ी होकर अपने और जरूरत पड़ने पर अपने पूरे परिवार का भार वहन सकती हैं। वह अनपढ़ हो या पढ़ी-लिखी, शहरी हो या ग्रामीण, कामकाजी या फिर गृहिणी उनके अंदर अभिव्यक्ति का सामर्थ्य है। समाज की स्वस्थ व्यवस्था के लिए जीवन की सबसे बड़ी और पहली आवश्यकता सामाजिक प्राणियों की स्वतंत्रता है, खासतौर पर स्त्री की स्वतंत्रता सबसे महत्त्वपूर्ण है। जिस समाज, समुदाय और प्रदेश की स्त्रियाँ स्वतंत्र, स्वावलंबी और चेतित होंगी, उसी की उन्नति होगी और विकास संभव होगा।

सहायक ग्रंथ :

1. नयापथ (त्रिपुरा विशेषांक) : सं. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, नई दिल्ली, 2010
2. स्टेटस एण्ड एम्पॉवरमेन्ट ऑफ ट्राइबल वोमेन इन त्रिपुरा:डॉ. कृष्णा नाथ भौमिक, कल्पज पब्लिकेशन, दिल्ली, 2005

(**परिचय :** लेखिका एकलव्य मॉडल डे बॉर्डिंग स्कूल किल्ला, उदयपुर, गोमती त्रिपुरा में शिक्षिका हैं।)